शादी से पेशतर

शर्मिला बोहरा

शादी से पेशतर

शर्मिला बोहरा

प्रकाशक: नॉटनल

प्रकाशन: मई, 2022

© शर्मिला बोहरा

कवर: निर्मला सिंह

स्केच: शशांक जालान

“श्रद्धेय श्री अशोक सेकसरिया की स्मृति को”

…about waiting, about unending expectation, about the moment that comes before something which itself never comes but which in the process reduces everyone to a frozen state of clown-like, pathetic banality in which only limited motion is possible in virtually the same place…

-Edward Said

…इंतज़ार, बेइंतहा आस, वह पल जो किसी चीज़ के होने के पहले आता है पर कभी नहीं आता, अपने न आने से हर चीज़ की मसखरी और दयनीय तुच्छता में जड़ीभूत कर देता है, जिसमें उसी स्थान पर बहुत थोड़ा हिलना-डुलना ही मुमकिन है…

- एडवर्ड सइद

ब्लर्ब

शादी, ख़ासकर लड़कियों की एक कठिन, जटिल और अत्याधुनिक समस्या बनती जा रही है। वह जीवन का एक मुक़ाम है, परम और चरम लक्ष्य नहीं, ऐसी प्रतीति पढ़ी-लिखी और तथाकथित आधुनिक लड़की को भी नहीं हो पाती, क्योंकि बहुत कुछ बदलने के बावजूद समाज जस का तस रह गया है। जींस पहननेवाली बाल-कटी लड़की राहगीरों को भले ही आज़ाद, खिलंदड़ और कभी-कभी लड़का तक होने का आभास दे या भ्रम पैदा करे, लेकिन उसकी और उसके संकटग्रस्त माता-पिता की तलाश अच्छा-सा लड़का और ठीक-ठाक घर ढूँढ़ने से आगे नहीं जा पाती। यह तलाश एक अथक और जानलेवा प्रयत्न बन जाती है और बार-बार असफल होने पर एक ऐसी प्रतीक्षा का रूप ले लेती है, जो तरह-तरह के भय, नए-नए नुस्ख़े आज़माने, ज्योतिषियों के चक्कर लगाने और समय को भरने के दबाव पैदा करती रहती है। जब तक शादी न हो तब तक लड़की क्या करे?

'शादी से पेशतर' की कई लड़कियों में एक डेज़ी कहती है, ''कुछ सोचो मत बस करती चली जाओ।'' क्या करती चली जाओ? नए-नए कोर्स—ब्यूटीशियन बनने के, कम्प्यूटर विशेषज्ञ बनने के, इंटीरियर डेकोरेटर बनने के और न जाने क्या-क्या। इस करते जाने के पीछे एक धुँधला-सा संकेत अपने पैरों पर खड़े होने का भी ज़रूर रहता है, लेकिन वह शादी को ही 'मोक्ष' मानने के कारण ठोस रूप ग्रहण नहीं कर पाता। 'शादी से पेशतर' हमें एक ऐसे अन्तःपुर के एकदम भीतर ले जाता है, जिसकी विदीर्णता का हम अनुमान भी नहीं लगा पाते क्योंकि हमें जो दिखाई पड़ता है, उसी को देख रहे होते हैं। यह

एक ऐसा कोलाज़नुमा लघु उपन्यास है जो सरसरी दृष्टि से पढ़ने पर सतह पर ही तैरता मालूम पड़ता है, पर ध्यान देने पर यह बताता है कि सतह सिर्फ़ सतही नहीं होती, उसमें नीचे गहराई और डूब भी रहती है।

लेखिका बिना किसी लेखकीय टिप्पणी और गुरुगम्भीरता के शादी का इन्तज़ार करती हुई लड़कियों से हमारी इस तरह मुलाक़ात करवाती है कि हम परेशानी महसूस करने लगते हैं। वह हमें लड़की देखने आए लोगों में बैठा देती है।

-अशोक सेकसरिया

अँधेरे में

नींद में पूर्णिमा पानी में चल रही थी। छपाक-छपाक की आवाज के साथ एक और आवाज सुनाई पड़ी। लगा, कोई उसका कन्धा हिला रहा है। नदी के पास वह अकेली थी। फिर कौन था ? इधर-उधर सिर घुमाया, कोई भी तो नहीं। आश्वस्त हो फिर चलने लगी। तभी वही आवाज एक बार फिर सुनाई पड़ी, 'उठो'। इस बार पूर्णिमा की नींद टूट गई। वह झट से उठ बैठी। आँखों के सामने मम्मी का डरा हुआ चेहरा दिखलाई पड़ा। घबड़ाकर उसने पूछा, 'क्या हुआ ? क्या बात है ?'

मम्मी ने धीरे से कहा, 'जाओ, पापा बुला रहे हैं।'

'क्यों ? पर क्यों ?' डर से पूर्णिमा की आँखें फैल गई, 'मुझे ?'

'तुम्हें ही नहीं, मीता को भी।'

पूर्णिमा ने सहमकर पूछा, क्या बात है मम्मी ?' मम्मी ने झुँझलाकर कहा, 'उन्हीं से पूछो। मुझे क्या पता।' पूर्णिमा फिर बोली, 'तो क्या आज भी वही बात कहेंगे ?' मम्मी ने शब्दों को चबा-चबाकर कहा, 'मालूम नहीं।'

पूर्णिमा पैरों पर पड़ी सफ़ेद चादर को हाथ से सरका अपने शरीर को घसीटकर गद्दे के किनारे ले आई और मम्मी के पीछे-पीछे कमरे से निकल गई।

रात के दो बज रहे थे। पापा के कमरे में अँधेरा था। कमरे से गर्म हवा उठ रही थी, जो पापा से निकलती हुई गोल-गोल घूम रही थी। कमरे में पड़ी हर चीज किसी